नेहरू

द स्टेट्समैन

(एकल नाटक)

संजय कुंदन

नेहरू द स्टेट्समैन

(एकल नाटक)

संजय कुंदन

मिथक का यथार्थ और संघर्ष

कभी-कभी सत्ता वर्ग जनता के बीच उठते असंतोष, विक्षोभ, अपनी असमर्थता दुर्बलताओं को छिपाने के लिए इतिहास के पन्नों से ऐसे मिथक ढूंढ कर लाने की कोशिश करता है जिससे सारा ठीकरा दूसरे के सर पर फोड़कर अपनी नाकामयाबी से पल्ला झाड़ सके। लेकिन मिथक का यथार्थ और उसका संघर्ष कभी-कभी उन पर इतना भारी पड़ जाता है कि उल्टे उन्हें लेने के देने पड़ जाते हैं। वे अपनी दलील में जितना झूठ गढ़ सकते हैं गढ़ते हैं। लेकिन उनका बनावटी झूठ पहली बारिश के फुहारे में ही रंग छोड़ जाता है और मिथक का यथार्थ अपने वास्तविक रूप में सबों के सामने आ जाता है।

इतिहास और राजनीति के क्षेत्र में नेहरू इन दिनों एक ऐसे ही मिथक के रूप में हमारे बीच उभर कर आये हैं। राजनीति में तो मिथकों के प्रयोग करने की एक लंबी पुरानी परंपरा रही है। विशेष कर धार्मिक मिथक राजनीति की दिशा और सत्ता के प्रति आस्था प्रकट करने के लिए खूब व्यवहार और प्रचलन में हैं बल्कि सत्ता का तो धार्मिक मिथकों से हमेशा एक तारतम्य भी बना रहता है। साहित्य भी इन मिथकों से खुद को अलग नहीं कर सका है। हिन्दी और दूसरी भाषाओं में मिथकों को लेकर उत्कृष्ट साहित्य रचे गये हैं। नाटक भी काफी लिखे गये हैं। लेकिन किसी भी रचनाकार के सम्मुख जब मिथक के माध्यम से वर्तमान समाज को चित्रित करना होता है तो बहुधा धार्मिक मिथक पर ही ज्यादा जोर भी होता है इतिहास के ऐसे चरित्र जो अपने कृत्यों से समाज में रहने वालों के बीच मिथक बन जाते हैं,

साहित्य का विषय तो बनते हैं। लेकिन धार्मिक मिथकों की अपेक्षा ऐतिहासिक मिथकों की संख्या कम हैं। धार्मिकता के प्रति लोगों की आस्था और गहरी भावनाओं के कारण धार्मिक मिथकों में आलोचना की संभावना कम होती है, वनिस्बत ऐतिहासिक मिथकों के किसी ऐतिहासिक मिथक के प्रति सबों की एक सहमति हो, ऐसा भी संभव नहीं है। पक्ष और विपक्ष दोनों तरफ कुछ न कुछ लोग खड़े हुए मिल जाते है। और इतिहास का काल निकट का हो तो अपनी तरफ से तोड़ने मोड़ने की भी काफी गुंजाइश मिल जाती है ।

आजादी के बाद विशेष कर रंगमंच की दुनिया में जिन ऐतिहासिक किरदारों ने लोगों का ध्यान आकर्षित किया है, उनमें गांधी, जिन्ना, अम्बेडकर, भगत सिंह और नेहरू प्रमुख हैं। गांधी पर तो कई नाटक लिखे गये हैं जिन पर लोगों की कई तरह की सहमति - असहमति देखने को मिलती है। जिन्ना पर तो इतनी असहमतियाँ देखने को मिलीं कि नाटक के मंचन पर प्रतिबंध ही लगा दिया गया था। वर्ण के सवाल पर लिखे गये अम्बेडकर के नाटक पर समाज एकमत कभी दिखाई नहीं दिया। वैसे ही भगत सिंह पर लिखे गये नाटक कभी राष्ट्रवादी पाले की तरफ झुकते नजर आते हैं तो कभी समाजवादी विचारधारा की तरफ। आजकल तो साहित्य की तरह नाटक में भी एक ट्रेंड चल पड़ा है कि इतिहास के नायक जो व्यापक जनमानस में ज्यादा लोकप्रिय हैं या जिनकी लोकप्रियता सर्वमान्य है, उनका राजनीतिक दलों या संगठनों द्वारा राजनीतिक हितों के लिए अधिग्रहण कर लिया जाए। उन्हें उनकी विचारधारा या दर्शन से मतलब नहीं होता है। बल्कि उनकी छवि को जनता में भुनाना उनका मकसद होता है। इसलिए ये इतिहास के इन किरदारों को क्रॉप कर

के इनका उतना ही अंश लेते हैं, जितना उनके काम आ जाए। उनकी विचारधारा से कुछ भी लेना-देना नहीं होता है। उनके एजेंडा को अगर इतिहास के नायक पूरी करने में कुछ भी कारगर होते हैं तो इनसे जुड़े तथ्य, घटनाओं में भी हेर-फेर करने से बाज नहीं आते हैं।

इतिहास के उन किरदारों में नेहरू भी एक हैं। नेहरू पर पिछले दिनों फिल्में तो खूब बनीं। धारावाहिक और डाक्यूमेंट्री भी देखने को मिली, पर नाटक कम नजर आये।आये भी तो उस पर लोगों की नजर नहीं पड़ी। जब से मुल्क में एक नये मिजाज की हुकूमत आयी है और जिस तरह उसने अपने राजनीतिक-सांस्कृतिक पटल पर नेहरू को लाना प्रारंभ किया है, नेहरू मंच के केंद्र में आ गये हैं। उनके लिए नेहरू केवल नेहरू नहीं हैं, उनकी और उनकी विरासत से जुड़ी सत्ता है जिस पर वर्तमान सरकार मुल्क की सारी नाकामियों का मुलम्मा जड़ देना चाहती है। राजनीतिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में अभिव्यक्ति का जो संकट दिख रहा है, ऐसा आजाद भारत में अब तक देखने को नहीं मिला है। कॉरपोरेट घरानों ने जितनी संख्या में मीडिया संस्थानों पर कब्जा किया है और उन्हें सरकारी प्रश्रय प्राप्त है, उसे देख कर तो स्वतंत्र और जनतांत्रिक पत्रकारिता की कोई कल्पना भी नहीं कर सकता है। विरोध का कोई स्वर उन्हें नहीं भाता है। किसी कोने से गर सुनाई पड़ा तो उनकी कोशिश होती है कि उसे तत्काल बंद किया जाये। प्रशासनिक स्तर पर नहीं हो पाता है तो कानूनी दांव-पेच में फँसाने की कोशिश करते हैं। उससे भी पार नहीं पाते हैं तो आर्थिक उठा-पटक कर के उस पर आधिपत्य जमा लेते हैं। ऐसी स्थिति उत्पन्न कर देते हैं कि विरोध का स्वर या तो खामोश हो जाता है या फिर छोड़ कर कहीं और चला जाता है। वे कहीं भी कोई प्रतिरोध

देखना नहीं चाहते हैं। विपक्ष के अस्तित्व में उनका कोई विश्वास ही नहीं है। सांस्कृतिक पटल पर भी कुछ ऐसा ही मंजर है। लोग कहते हैं, इनकी कोई सांस्कृतिक नीति नहीं है। या संस्कृति से जुड़े लोगों के वोट ही कितने हैं, कितने लोग मत देने जाते हैं? जितना ध्यान संस्कृतिकर्मी पर देगी, उससे कम श्रम लगा कर दूसरी जगहों से वोट की फसल उगा लेगी। लेकिन यथार्थ ये नहीं है। दबे पाँव आने वाला फासीवाद अब हमारे घरों में दाखिल हो गया है। हमारे पड़ोस के घरों में दस्तक देने लगा है। सोसाइटी के फ्लैट्स में किसी न किसी बहाने घुस गया है। पार्कों में शाखाएँ लगने लगी हैं। हर वक्त हर जगह जेब में रहने वाले मोबाइल के व्हाट्सएप ग्रुपों में गलबहियाँ करने लगा है और वहाँ वह चुप नहीं है। शांत नहीं बैठा है। जहां आपने सत्ता पर कोई उँगली उठाई नहीं कि न जाने किन-किन बिलों से निकल कर आप पर हमला करना शुरू कर देते हैं। आप को विश्वास नहीं होगा कि जिसे आप अपना सबसे करीब का समझते थे, वो भी आपके विरूद्ध खड़ा नजर आएगा आपके तर्क को काटने के लिए कोई भी कुतर्क देने से परहेज नहीं करेगा। आप सोचते होंगे कि ये कुछ ही लोग हैं, इनकी संख्या ज्यादा नहीं होगी। वास्तविकता है कि ये अकेले नहीं हैं। श्रृंखलाबद्ध हैं। ये आपको हर जगह उपलब्ध हो जायेंगे । यहाँ तक कि इन्होंने रिश्तों में भी सेंध मार दी है। पिता-पुत्र, भाई-बहन, चाचा जैसे करीबी रिश्तेदारों में विचारों की दीवार खड़ी कर दी है। आखिर ये जड़ विकृत विचार आ कहाँ से रहे हैं? एक ही तरह के कुतर्क का स्रोत है कहाँ ?

ये कोई संयोग नहीं है कि नेहरू प्रसंग लोगों के बीच आ गया है। एक योजनाबद्ध तरीके से राजनीतिक और सोशल मीडिया में नेहरू को लाया गया है। कभी ये बताया जा

रहा है अभी जो कश्मीर के हालात हैं, उसके लिए नेहरू सर्वेसर्वा दोषी हैं। देश में बढ़ती महंगाई और गिरती मुद्रास्फीति का कोई जिम्मेदार है तो वे हैं नेहरू दिनोंदिन लोगों के बीच जो साम्प्रदायिकता का द्वेष बढ़ता जा रहा है, अलगाववाद और आतंकवाद के पनपने और विकसित होने के जड़ में नेहरू हैं जिनके तुष्टिकरण अपनाने के कारण देश अंदर से खोखला और कमजोर साबित हुआ है। एकल के प्रारंभ में ही सत्ता द्वारा मढ़े आरोपों पर चुटकी लेते हुए नाटककार ने जो लिखा है, सृजन के पीछे के उद्देश्य को सामने लाता है। आजकल सत्ताधारियों की तरफ से नेहरू को जिस तरह यह साबित करने की कोशिश की जा रही है कि वे सनकी, स्वार्थी, ऐयाश, हिंदू विरोधी, पश्चिम का दलाल थे या उन्होंने देश को बर्बाद कर दिया, उन्हीं की वजह से कश्मीर समस्या उत्पन्न हुई, उसके जवाब में नेहरू कहते हैं कि 'आजकल जिधर देखो मेरी ही चर्चा है । हर समस्या के लिए जैसे मैं ही जिम्मेदार हूँ। भूख, गरीबी, आतंकवाद हर चीज के लिए नेहरू जिम्मेदार। महंगाई बढ़ रही है नेहरू जिम्मेदार। किसान आत्महत्या कर रहे हैं, नेहरू जिम्मेदार | नल में पानी नहीं आ रहा, नेहरू जिम्मेदार। बिजली चली गयी नेहरू जिम्मेदार। भारत क्रिकेट का वर्ल्ड कप नहीं जीत पाया, नेहरू जिम्मेदार। गनीमत है किसी ने नहीं कहा – कोरोना के लिए भी नेहरू जिम्मेदार। जो बात कभी मैंने कही ही नहीं, वह भी मेरे मुँह में डाल दी जा रही हैं। यह प्रचारित किया गया कि मैंने अपने को एक्सीडेंटल हिंदू कहा। पड़ गये लोग मेरे पीछे देखो यह आदमी तो अपने को हिंदू ही नहीं मानता कहता है कि मैं एक्सीडेंटल हिंदू हूँ।'

कुछ लोग कह सकते हैं कि जिसको जो कहना है, कह लेने दो किसी के कहने से झूठ सच में थोड़े बदल जायेगा । सच तो सच ही रहेगा। लेकिन गोएबल का कहना इससे बिलकुल उल्टा है। वो कहता है, किसी झूठ को बार-बार कहने से एक दिन झूठ ही सच बन जाता है झूठ को ही लोग सच मानने लगते हैं। जो प्रयोग पश्चिम के फासीवाद में किया गया था, अब इस देश में भी दुहराया जाने लगा है। नेहरू उसके एक सहज उदाहरण हैं। यह देश वर्तमान में जिस दौर से गुजर रहा है, आज इससे सारा देश वाकिफ है। भले कुछ लोग इस बहस में मगजमारी कर रहे हों कि इसे फासीवाद का नाम दिया जाये या नहीं। या उसके लक्षण अभी स्पष्ट हैं कि नहीं। उसके आने की आहट तो सुनाई नहीं पड़ रही है? हालत ये है कि वो दरवाजे पर दस्तक देने की भी जरूरत नहीं समझता है। दरवाजा ठेल कर सीधे हमारे घर के अंदर दाखिल होकर हमारे सामने कुर्सी पर बैठ गया है और घूर घूर कर शंकित नजरों से देख रहा है, बदतमीजी से उल्टे-सीधे सवाल कर रहा है।

नाटककार संजय कुंदन का यह एकल उसी का रचनात्मक जवाब है। नेहरू पर आक्षेप लगाने वाले जानते थे कि नेहरू को टारगेट कर एक तीर से कई पर निशाना लगाया जा सकता है। नेहरू केवल देश के प्रधानमंत्री ही नहीं थे. एक दल के मुखिया भी थे। गांधी के सबसे निकट और उनकी विचारधारा को सबसे जोरदार ढंग से रखने वाले उत्तराधिकारी थे तो दूसरी तरफ आधुनिकता और समाजवाद के गहरे हिमायती भी थे। ऐसे में अगर कोई अकेले नेहरू पर हमला करता है तो वो एक हमले से गांधीवादी चिंतन, समाजवादी धारा से जुड़े एक बड़े समूह और साझी संस्कृति - साझी विरासत में आस्था रखने वालों पर एक

साथ घातक हमला कर रहा है। साथ ही इसके समानांतर लोगों के बीच धार्मिक संकीर्णता, अंध राष्ट्रवाद और जातिगत नस्लीय भावना को भड़का कर राजनीतिक सत्ता पर काबिज होने का जो हिडन एजेंडा है, वह भी किसी न किसी रूप में पूरा करने में लगा है।

यह नाटक किसी दलगत राजनीति के मद्देनजर नहीं लिखा गया है। बल्कि जिन्हें जवाब देना चाहिए, वे चुप हैं चुप होने का एक कारण यह भी है कि इन दिनों चाहे वाम पक्ष हो या दक्षिण पक्ष विचारधारात्मक स्तर पर अपने संगठन या उससे जुड़े एक्टिविस्ट को सॉलिड बनाने से बचती है। रेडीमेड एक्टिविस्ट के चक्कर में नारे – धरना जुलूस निकालने वाले तो बहुतेरे मिल जाते हैं, वैचारिकता के मोर्चे पर लड़ाई लड़ने वाले कम ही मिलते हैं। संजय कुंदन का यह एकल वैचारिक मोर्चे पर मजबूत हमलावर के रूप में तार्किक रूप से जवाब देता हुआ दिखता है। मिथ्या का जवाब मिथ्या से नहीं दिया जाता है। हम जानते हैं कि फासीवादी विचारधारा के पेड ट्रॉलर एक एजेंडा के तहत लोगों के बीच भ्रामक सूचनाओं, जानकारियों का तंत्र बिछाते रहते हैं ताकि सरल, कम जानकारी वाले, तटस्थ लोग उनके बहकावे में आकर खोदे गये गड्डे में गिर जाएं और घायल होकर अपना विवेक खो दें और वे वही भाषा बोलने लगे, जो वे चाहते हैं।

संजय कुंदन ने यह नाटक केवल नेहरू के बचाव के लिए नहीं लिखा है। नेहरू के माध्यम से कहीं न कहीं ट्रोल की उस धारा को भी निशाने पर लिया है जो आए दिन कभी गांधी तो कभी अम्बेडकर पर झूठे तथ्यों के सहारे टिप्पणियाँ किया करते हैं। जहां उनके तर्क गढ़े हुए होते हैं, संजय कुंदन के तर्क की बुनियाद में इतिहास का सच होता है। चाहते तो